त्योहारों का महत्व

Tyoharo ka Mahatva

हमारे जीवन में पर्वों का विशेष महत्त्व है। ये पर्व हमारी संस्कृति की पहचान हैं। भारत भूमि महान है। यहाँ हर तिथि को कोई न कोई पर्व पड़ता रहता है। इन पर्वों के साथ एक विशेष बात जुड़ी है और वह है- लोककथाएँ और मनोरंजन। पर्वों पर तरह-तरह की कलाओं का प्रदर्शन होता है। इन कलाओं में हमारी संस्कृति की झलक मिलती है। ये कलाएँ हमारा मन लुभा लेती हैं। पंजाब का भंगड़ा, आंध्र का लोक नृत्य घेनालु तथा लोकगीत 'बतकम्मा', असम का बिहू तथा उत्तर भारत की होली, रामलीला और नौटंकी देखते ही बनती है। भारत में पर्वों की विविधता एवं अधिकता को देखते हुए इसे पर्वों का देश कहा जाता है। पर्वोें को सामूहिक रूप से मनाने से आपस में भाईचारा एवं पे्रम बढ़ता है। हमारी संस्कृति में इसी भावना को प्रश्रय दिया गया है।

हमारे देश में सामासिक संस्कृति है। इसमें अनेक संस्कृतियों की इच्छी बातों को अपनाया गया है। यही कारण है कि हमारे पर्व इन सभी की झलक प्रस्तुत करते हैं। नववर्ष के पर्व का ही उदाहरण लीजिए। अंग्रेजी कलेंडर के अनुसार पहली जनवरी को नववर्ष होता है। भारतीय पंचांग के अनुसार इसे अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग ढंग से मनाते है। चैत्र शुक्ल के प्रथम दिन आंध्र, कार्नाटक और तमिलनाडु में 'उगादि पर्व' मनाया जाता है। पंजाब के लोग 'बैशाखी' को नववर्ष के रूप में मनाते हैं। असम के लोग वर्ष के पहले दिन को 'बिहू' पर्व के रूप में मनाते हैं। पारसी लोग 'नवरोज' के रूप में नववर्ष का पर्व मनाते हैं। ये पर्व समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। ये पर्व हमें अपनी परंपरा और संस्कृति का ज्ञान कराते हैं सब लोग आपसी वैर-भाव भूलकर एक-दूसरे का सम्मान करना सीखते हैं। इनसे हम शिक्षा ग्रहण करते हैं। कुछ पर्वों के उदाहरण देकर इनके माध्यम से संस्कृति की पहचान की बात भली प्रकार समझी जा सकती है। विजयादशमी के दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की। यह अन्याय के युग के अंत का पर्व है। विजय का क्या अर्थ है ? क्या यह आधिपत्य है अथवा यह अपने लिए किसी वैभव की प्राप्ति है ? यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो हमें पता चलता है कि इन दिग्विजयों का उद्देश्य आधिपत्य स्थापित करना नही रहा है। कालिदास ने एक शब्द का प्रयोग किया है 'उत्खात-

प्रतिरोपण' यानी उखाड़कर फिर से रोपना। जैसे धान के पौधे उखाड़कर पुनः रोपे जाते हैं, उसी प्रकार एक क्षेत्र को जीतकर पुनः उसी क्षेत्र के सुयोग्य शासक को सौंपा जाता है। इस दिग्विजय में उन देशों की अपनी संस्कृति समाप्त नहीं की गई बल्कि उस संस्कृति में ऐसी पोषक सामग्री दी गई कि उस संस्कृति ने भारत की कला और साहित्य को अपनी प्रतिभा में ढालकर सुंदरतर रूप खड़ा किया। इससे भारतीय धर्म-संस्कृति को भी नया रूप मिला। हम खेतिहर संस्कृति वोले भारतवासी आज भी जौ के अंकुर अपनी शिखा में बाँधते हैं और उसी को हम जय का प्रतीक मानते हैं। हमारी संस्कृति में विजय-यात्रा समाप्त नहीं होती, फिर से शुरू होती है, क्योंकि भोग में अतृप्ति, भोग के लिए छीनाझपटी, भय और आतंक से दूसरों को भयभीत करने का विराट अभियान, दूसरों की सुख-सुविधाओं की उपेक्षा, अहंकार, मद, दूसरों के सुख से ईष्र्या ये सभी जब तक होंगे, चाहे कम हों या अधिक, 'विरथ रघुवीर' को विजय-यात्रा के लिए निकलना ही पड़ेगा। हमारी संस्कृति में विजयादशमी के दिन नीलकंठ देखने का महत्त्व है। इस पक्षी में लोग विषपायी शिव के दर्शन करते हैं। आत्मजयी जब विजय के लिए निकलेगा तो उसे बहुत सा गरल पीना ही पड़ेगा। यह गरल अपयश का है, लोक-निंदा का है।

अमावस्या की सबसे घनी अंधेरी रात होती है। पावस के चार महीनों का तम असंख्य-असंख्य कीट-पतंग एक बार छोटे-छोटे दीपों के प्रकाश से अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जगती हुई रोशनी से जूझना चाहता है और जूझते-जूझते समाप्त हो जाता है। पूर्वी भारत में दीपावली का पर्व कालीपूजा के रूप में मनाते हैं। काल मोह और मद को मूल में उच्छिन्न करने वाली देवी है। इसीलिए यह पर्व ज्ञान के जागरण का पर्व है। हजारों वर्षों से इसी दिन भारत की अर्थव्यवस्था सँभलने वाले लोग हिसाब-किताब पूरा करते थे और आज भी कर रहे हैं। दीपावली के दिये अपनी काँपती लौ से स्मरण कराते हैं कि सच्चाई का कोई आवरण नहीं होता। होता भी है तो वह टिकता नहीं है। प्रकाश के देवता सत्य का मुँह सुनहरे ढक्कन से ढका हुआ है। उसे उतार दो। उसे अपने आप चमकने दो।

आज भी हिंदुस्तान की नारी अपने घर में अनाज से भरे बर्तन प्रयोग करती है। मिट्टी का दिया जलाती है, धान की खीलों से मिट्टी के ही गणेश-लक्ष्मी की पूजा करती है। लगता है संस्कृति का कोई एक कोना अभी सुरक्षित है, जहाँ मन की पवित्रता, सच्चाई और कलासृष्टि के प्रति संवेदना बची हुई है। हमारे पर्व हमारी संस्कृति की पहचान हैं।